ISSN No. 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 3, अंक : 1, अप्रैल 2016

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव : वर्तमान समय के संदर्भ में

अजीत सिंह
शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार-संक्षेप

परिवर्तन विकास का दूसरा नाम है। समय-समय पर हर क्षेत्र में परिवर्तन होते रहे हैं एवं आगे भी होते रहेंगे। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में वैदिक काल से लेकर अब तक अनेकों परिवर्तन हुए। इन सामाजिक परिवर्तनों ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का साकारात्मक एवं नाकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित किया है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के कारण अत्यधिक प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण समयाभाव एवं भाग-दौड़ से भरपूर जीवन शैली का असर लगभग सभी कलाओं पर हुआ है। जिसका असर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर भी हुआ है, जैसे रागों के स्वरूप, रागों का प्रस्तुतिकरण, रियाज़ की समय सीमा का कम होना, नऐ रागों की रचना एवं उनका प्रचार-प्रसार, पुराने रागों का धीरे-धीरे लुप्त होना, पुरानी बदिंशों में परिवर्तन, ध्रुवपद गायन का प्रचार कम होना, पुरानी तालों का कम प्रयोग होना, सूचनाक्रांति का प्रभाव जैसे: रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मीडिया का प्रभाव होना इत्यादि। इतने अधिक उतार-चढ़ाव के बाद भी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत विकसित होता रहा है एवं अन्य सभी ललित कलाओं में अपना स्थान सबसे ऊंचा रखने में सक्षम रहा। इतना ही नहीं अपितु हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का दुनिया में अन्य सभी प्रकार के संगीत साकारात्मक रूप में प्रभावित हुए हैं। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत आज इस मकाम पर है कि भारत के विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में इसे एक ऐच्छिक विषय के रूप में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरफ से मान्यता मिल चुकी है तथा पूरे भारत में बहुत सी ऐसी संस्थाए भी है जो केवल हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्रदान कर रही है और उनको भी भारत सरकार की तरफ से एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरफ से मान्यता प्राप्त है।

मुख्य शब्द : शास्त्रीय संगीत में परिवर्तन, रागों का स्वरूप, प्राचीन बन्दिशों में परिवर्तन, प्रचलित तालों का कम प्रयोग, ध्रुवपद गायकी

शोध-पत्र

यह तथ्य किसी भी जिज्ञासु संगीत छात्र के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। संगीत, विशेषत: हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, युगों की चेतना के परिणामस्वरूप फलता-फूलता और विकसित होता रहा है। आधुनिक युग के प्रबुद्ध संगीत प्रेमियों तथा संगीत विषयक लेखकों ने इन परम्पराओं का अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार करते हुए कतिपय ग्रंथों को प्रस्तुत किया है। पत्र-पत्रिकाओं में भी यत्र-तत्र उर्पयुक्त प्रसंग पर कभी-कभी कुछ लेख प्रकाशित होते रहते है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत एक सजीव एवं अर्मूत कला है जिसमें कलाकार एवं श्रोता दोनों के लिए जीवन के परमानन्द की सम्भावना निहित है। इसी से इसे 'ब्रह्मानन्दसहादर्म' कहा गया है। शारंगदेव तथा उनके संगीत रत्नाकर के टीकाकारों ने इसे विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया है। इतना ही नहीं इन्होंने प्राणी मात्र के सम्पूर्ण जगत को नादाधीन माना है। सुधाकर टीका के लेखक सिंह भूपाल ने मतंग मुनि के बृहदेशी से इस मत की अधिक विस्तारपूर्वक पुष्टि की है।

मुस्लमानों के आगमन के पश्चात् उत्तर भारत के शास्त्रीय संगीत में एक विशिष्ट धारा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे संगीत शास्त्रियों ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की संज्ञा दी है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह धारा प्राचीन भारतीय परम्परा के साथ अन्य धाराओं के सम्मिश्रण से प्रकट हुई, जिसे विद्वान् ऐशिया के विभिन्न भू-भागों से आई हुई संगीत संस्कृति का परिणाम मानते है।

भारत की यह प्राचीन विलक्षणता में संगीत जगत को अछूता नहीं छोड़ा। ईसा की प्रथम एवं द्वितीय सदी में बने भरहुत और सांची की कलाकृतियों में संगीत सम्बन्धी अनेक चित्र है। पैर में पट्टीदार चप्पल, सिर पर नुकीली टोपी लगाये हुए तथा विभिन्न वाद्य यंत्रों को बजाते हुए चित्र शक संगीतज्ञों को सूचित करते है। शक लोग संगीत में निपुण थे। कालान्तर में यह जाति घुलमिल कर भारतीय संस्कृति में समाविष्ट हो गई, अब इसकी प्राचीनता का कोई चिन्ह शेष नहीं है।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात् भारतीय संस्कृति की मूलधारा उसी प्रकार प्रवाहमान रही। मुसलमान संगीतज्ञों ने भारतीय संगीतज्ञों से प्रेमपूर्वक या बलपूर्वक बहुत कुछ प्राप्त किया और अपनी विशिष्टता प्रमाणित करनी चाही, परन्तु इस मूल से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विभिन्न धारायें प्रस्फुटित हुई। ध्रुवपद, धमार, ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट, ठुमरी, टप्पा, ग़ज़ल, भजन, लोक गीत, सूफी आदि गायन शैलियों का जन्म हुआ। इसी प्रकार वीणा, सितार, सुरसिंगार, सुरबहार, विचित्रवीणा आदि तन्त्र वाद्यों की वादन शैलियों में क्रमश: सम्पन्नता आई।

मुस्लमानों के शासनकाल में अकबर का युग हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है। अकबर से कुछ पूर्व राजा मान सिंह 'तोमर' के समय प्राचीन परम्परा की गायन शैली में 'ध्रुवपद' ने परिमार्जित रूप ग्रहण किया और अकबर के युग में अपनी पराकाष्टा का प्रदर्शन किया। जहांगीर और शाहजहां के शासन काल में इस विषय की प्रतिष्ठा यथावत

बनी रही। परन्तु औरंगजेब के समय में इसे कुछ नवीन चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जिससे इसकी गरिमा को ठेस पहुंची।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर सामाजिक परिवर्तन का क्या प्रभाव हुआ, प्राय: सभी सहृदय हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत प्रेमियों के लिए शुरू से ही अनुभव एवं चिन्तन का विषय रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: इसी कारण कलाकार एवं उनके भक्तवृन्दों में बहुधा तर्कसंगत प्रसंग होते है और कभी-कभी व्यापक दृष्टिकोण के अभाव में वैमनस्यता जागृत हो जाती है। हर छोटे बड़े कलाकार एवं उनके अनुयायी अपनी-अपनी हांकने लगते हैं, और यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की धरोहर केवल उन्हीं के पास सुरक्षित है, जबकि यर्थाथ कुछ और ही है। डींग हांकने वाले कलाकार पहले भी थे, आज भी हैं। जिनकी बातों से साधारण संगीत प्रेमी भ्रमित हो जाते हैं।

आचार्य बृहस्पति जी ने भी इसी प्रकार के अनेक तथ्यों का वर्णन किया है, शोध छात्रों के लिए इन बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है। संगीत शास्त्री एवं इतिहासकारों ने कुछ ग्रंथ अवश्य लिखे परन्तु कहीं भी क्रमबद्ध रूप से विभिन्न परम्पराओं में एकता एवं भिन्नता तथा पारस्परिक प्रभावों को एकत्र करके संजोकर परिवर्तन एवं विकास पर विशद विवेचन नहीं किया। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का इतिहास अब भी एक किलष्ट विषय बना हुआ है।

अनेक ग्रंथों से कुछ तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं, परन्तु साधारण प्रयास से ऐसा लगता है कि 'कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा' जोड़कर एक भवन का निर्माण हो सकता है, परन्तु सुपरिकल्पित योजनानुसार (डिजाईन्ड आर्किटेक्चर) एक स्थापत्य कला का उदाहरण प्रस्तुत नहीं हो सकता।

संगीत इतिहासकारों ने इतिहास की शृंखला को जोड़ते हुए सामंजस्यता प्रदान करने का प्रयास किया, परन्तु जो सामाजिक परिवर्तन का सम्यक अध्ययन तभी किया जा सकता है जब ऐतिहासिक क्रम से चलते हुए संगीत के शास्त्र पक्ष और कला पक्ष को छुते हुए चलें एवं सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के साथ-साथ युगीन चेतना को देखते चलें। इनमें से किसी भी एक तत्व की उपेक्षा करने पर यह अध्ययन सुसम्मपन्न होगा या नहीं ऐसी शंका उपस्थित होती है।

क्रम विकास का ही दूसरा नाम है अभिव्यक्ति। क्रम विकास के विचित्र धारा एवं सुशमा से ही सामाजिक परिवेश का सृजन होता है। समाज मनुष्य एवं प्राणियों को लेकर ही निर्मित होता है। प्राणियों की श्रेणी के अनुसार समाज भी भिन्न-भिन्न रूप विकसित होता है। प्रागैतिहासिक युग से आज तक समाजिक परिवर्तनों का जो रूप सृजित हुआ है तथा उसका हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर क्या प्रभाव पड़ा, उसके पीछे क्रम विकास की ही गाथा है। इस क्रम विकास की गाथा को प्रकाशित करता है इतिहास।

शोधकर्ता के विचार से इसी क्रम विकास के परिवर्तन के धारा प्रवाह को यदि इतिहास में समावेशित नहीं किया गया तो इतिहास एक घटना चक्र की सूची मात्र या केटेलॉक बनकर रह जाता है।

प्रस्तुत शोध विषय की महता पर एक और बिन्दु विचारणीय है। प्राय: सभी प्रबुद्ध संगीत-प्रेमी यह अनुभव करते है कि हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतियां एवं घराने आज जो प्रचलित हैं वे सभी पूर्व मुगलकाल की नींव पर बने हुए हैं एवं उनकी निर्माण योजना उत्तर मुगलकाल से प्रारम्भ होकर अब तक की शृंखलाओं के जोड़ पर आधारित है। यह विचार लगभग विगत तीन शतकों के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालने के लिए विद्वानों को विवश करता है। सभी यह सरलता से मान लेंगे कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में विगत तीन शतकों के अन्तर्गत जो प्रचार-प्रसार का कार्य हुआ, उससे पिछले हजारों वर्षों की उपलब्धियां धूमिल हो गई एवं अब से तीस वर्ष पूर्व तक की भांति पर भी अपना व्यापक प्रभाव डालकर पिछले तीन सौ वर्षों की उपलब्धियों के खोजबीन का विषय बना दिया है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में परिवर्तन :

प्रकृति स्वाभाविक रूप से ही परिवर्तनशील है अर्थात परिवर्तन होते आ रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। अत: हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत भी परिवर्तन के अनेकों दौर से गुजर का वर्तमान दौर में पहुँचा है। समय-समय पर विभिन्न प्रकार की गायन शैलियों ने जन्म लिया और एवं हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में प्रसिद्ध होती चली गई। फलस्वरूप पहले के हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत एवं वर्तमान हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में आए परिवर्तन को साधारणतया महसूस किया जा सकता है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में अभी तक जो परिवर्तन हुए उनका संक्षिप्त रूप में वर्णन निम्नलिखित है:-

रागों का स्वरूप:

रागों के स्वरूप में यह परिवर्तन आया है, पहले रागों की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता था न कि रंजकता पर। आजकल रागों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए रागों में विवादी स्वरों के इस्तेमाल का प्रचलन अधिक हो गया है। जैसे:- भैरवी राग में शुद्ध रे, ग, ध एवं तीव्र मध्यम का, राग केदार में शुद्ध 'नि' का, बिहाग में तीव्र मध्यम का, राग जोग में पहले दोनों निषाद प्रयोग होते थे, अब केवल कोमल निषाद ही अधिकत्तर कलाकार करने लगे हैं। इसके अलावा आजकल भैरव जैसे मुख्य रागों का प्रयोग कम हो गया है उसके स्थान पर अहीर भैरव, नट भैरव, रामकली इत्यादि भैरव राग से बने रागों का प्रयोग अधिक हो गया है। आजकल अप्रचलित रागों जैसे:- बैरागी, कुकुभ बिलावल, शिवमत भैरव, सरपरदा बिलावल, खट बिहाग, जैत कल्याण जैसे रागों की जगह प्रचलित रागों जैसे:- मारु बिहाग, जयजयवन्ती, रागेश्री, पुरिया धनाश्री इत्यादि का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसके अलावा और अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रागों का प्रस्तुतिकरण:

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक विशेषता सदा से ही रही है कि एक ही राग को विभिन्न कलाकारों द्वारा कई बार गाये जाने पर हर बार कुछ नया सुनने को मिलता है एवं उससे श्रोताओं को और अधिक आनन्द प्राप्त होता है। पिछले तीन-चार दशकों से कलाकारों एवं श्रोताओं दोनों

के पास समय का अभाव होने के कारण रागों के प्रस्तुतिकरण में ये परिवर्तन आया है कि पहले एक ही राग को तीन-तीन घण्टे गाया एवं बजाया जाता था, लेकिन आजकल एक घण्टे में तीन-तीन राग प्रस्तुत किए जाते हैं। आलापचारी में कमी आई है एवं गले की तैयारी तथा सरगम की तानों का अधिक प्रयोग होने लगा है। आलापचारी के स्थान पर राग में तैयारी और तान की प्रबलता। कम से कम समय में आकर्षक प्रस्तुति के लिए गले की तैयारी एवं तानों की तैयारी पर इन दिनों कलाकारों एवं श्रोताओं का ध्यान ज्यादा आकृष्ट होता है।

ऐसा नहीं है कि इस बदलाव से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का केवल नुक्सान हुआ है, इसके साकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो फायदा भी हुआ है। फायदा ये हुआ है कि कम से कम समय में अच्छे से अच्छा संगीत प्रस्तुत करने का प्रयास गायक एवं वादक करने की कोशिश करने लगे हैं, जिससे कम समय में भी श्रोताओं की तृप्ति होने लगी है एवं तानों एवं सरगमों का अद्‌भुत प्रकार सुनने को मिलता है सरगम की तानें ऐसे श्रोताओं को भी प्रभावित करने लगी है जो शास्त्रीय संगीत के बारे में अधिक समझ नहीं रखते हैं।

''पहले गायन में आवाज़ की बुलंदी पर अधिक ध्यान दिया जाता था और सम्भवत: इसका कारण था कि सभी में श्रोता दूर-दूर तक सुन सकें। लेकिन आज आवाज की बुलंदी और जोर-जोर से गाने से स्वर माधुर्य नष्ट होने का डर रहता है। एक निश्चित सीमा के बाद आवाज फट जाने का भी डर रहता है। ध्वनिविस्तारक यन्त्रों के आ जाने से इन समस्याओं से निजात मिल गयी है, क्योंकि अब नीचे स्केल में गाकर भी अधिक श्रोताओं तक अपनी आवाज़ पहुँचा पाना सम्भव है।''[1]

रियाज़ की समय सीमा :

अनेकों विषयों को एक साथ लेकर चलने की कोशिश में विद्यार्थियों के समय का विभाजन होने लगा है, जिसके कारण रियाज करने के समय में कमी आई है। आजकल के कलाकार अधिक से अधिक आधे घण्टे की प्रस्तुति दे पाता है। यदि उससे अधिक गाना पड़ जाय तो उसके बाद फिर वहीं दोहराव शुरू हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि उनमें रियाज तथा रचनात्मकता की कमी होती है।

नए रागों की रचना एवं उनका प्रचार-प्रसार :

रागों में परिवर्तन एवं नए रागों की रचना पूर्णत: प्राकृतिक है लेकिन नए राग की रचना करते समय रागों के नियमों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही रचना करती चाहिए ताकि संगीत की शास्त्रीयता बनी रहे एवं नवीनता सामान्तर रूप से एक साथ चल सके। अत: नए रागों की रचना का मार्गदर्शन अपने शास्त्रों से लेना पड़ेगा अन्यथा दिशाहीन होने का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में रागों की अधिकता होने के कारण नवीन रागों की रचना की सम्भावानाएं बहुत कम है, इसलिए शास्त्रीय नियमों का पालन करना अतिआवश्यक हो जाता है।

''संगीत के क्षेत्र में पहले ही अनेक राग हैं, अतएव नए मौलिक एवं बिल्कुल अलग सा राग बना देने की देने की सम्भावनाएं वैसे ही बहुत कम है। पुराने रागों को या अप्रचलित रागों को ही नए ढंग से प्रस्तुत करने से ही उनमें नवीनता आ जाती है। इसके साथ ही प्रचलित रागों की चलन एवं स्वरों में परिवर्तन थोड़ा परिवर्तन करके भी नए राग बनते हैं- जैसे भूपाली के स्वरों में परिवर्तन करके भूपेश्वरी एवं प्रतीक्षा, अहीरी तोड़ी से परमेश्वरी, मालकोश से चन्द्रध्वनि आदि। ये सभी राग कुछ बीते दशकों में ही बनाए गए हैं एवं आज ये बहुत लोकप्रिय है।''[2]

इसके अलावा दिल्ली घराने में आजकल उस्ताद इकबाल अहमद खां एवं तनवीर अहमद खां साहब के साथ साक्षात्कार के दौरान कुछ नए रागों की रचना के बारे में पता चला है। ''जैसे-चाँदकौंश जो कि राग मालकौंस, चन्द्रकौंस एवं जोगकौंस के मिश्रण से तैयार किया गया है, दूसरा चाँदकल्याण राग की रचना यमन कल्याण को आधार मानकर की है तथा तीसरा राग चाँदकेदार राग केदार को आधार मानकर रागों की रचना अभी-अभी हुई है एवं आजकल उनको मंच पर गाते हुए देखा एवं सुना भी है।''[3]

प्राचीन रागों का अप्रचलित होना:

कुछ राग ऐसे हैं जो मुख्य राग है लेकिन उनका प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है उनमें से एक राग भैरव है। राग अहिर भैरव एवं नट भैरव को बहुत गाया बजाया जा रहा है लेकिन इनके जन्मदाता राग भैरव को बहुत कम गाया एवं बजाया जाता है। इसके अलावा राग गुणकली, राग मालीगौरा एवं राग सम्पूर्ण मालकौंस, जिसका प्राचीन नाम मालकंश था, ये सभी राग लगभग लुप्त होते जा रहे हैं।

प्राचीन बदिंशों में परिवर्तन:

वर्तमान में मंच प्रदर्शन के दौरान अधिकत्तर प्राचीन बंदिशों को परिवर्तित करके गाया जाता है अर्थात किसी बंदिश की धुन परिवर्तित होती है तो किसी के बोलों में ही परिवर्तन पाया जाता है, किसी-किसी बंदिश में तो यह देखने में आया है कि उसके सम का स्थान ही परिवर्तित करके गाया जा रहा है। जिसके कारण विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए यह सम्भावना बनी रहती है कि किस को सही माना जाय। जैसे: राग बिहाग में ''अब हूं लालन महका....'' राग यमन में ''पिया की नजरिया जादू भरी...'' एवं ''सखी ऐरी आली पिया बिन...'', राग भीमपलासी में जा-जा रे अपने मंदिरवा...'' इत्यादि रागों की प्राचीन बंदिशों में अलग-अलग उस्तादों द्वारा विभिन्न प्रकारों से गाये हुए रिकार्ड उपलब्ध है।

ध्रुवपद गायकी का अप्रचलित होना:

राजा मानसिंह तोमर (1486-1516) के शासन काल से लेकर अकबर के शासन काल तक ध्रुवपद गायन काफी प्रचार में था। अकबर के शासन काल (1542-1605) में तानसेन के बार सदारंग-अदारंग प्रसिद्ध ध्रपद गायक माने जाते हैं। ख़्याल गायन का प्रचार की शुरूआत अकबर के शासन काल में ही हो चकी थी। उस समय ध्रुवपद गायन के साथ-साथ सदारंग एवं अदारंग ख़्याल गायन भी गाने लगे थे। अत: अकबर के शासन काल के बाद धीरे-धीरे ध्रुवपद गायन का प्रचार कम होते-होते इतना अप्रचलित

हो गया है कि अब केवल शास्त्रीय संगीत सीखने वालों के पाठ्यक्रम में तो होता है, परन्तु सिखाने वाला कोई होता ही नहीं है।

प्राचीन तालों का कम प्रयोग:

जैसे विलम्बित ख़्याल में झूमरा ताल के स्थान पर एकताल का प्रयोग एवं ध्रुत ख़्याल में तीनताल का प्रयोग अधिक किया जाता है। प्राचीन तालों का आजकल कम प्रयोग होने लगा है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत शिक्षण पद्धति में परिवर्तन:

प्राचीन काल में संगीत शिक्षा गुरुमुख से कठोर अनुशासन में रहकर ही ग्रहण की जाती थी। इसके बाद संगीत शिक्षण के घराने बने, घरानों के अन्दर चारदीवारी के अन्दर संगीत सिखाया जाने लगा। इतना ही नहीं विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा प्रारम्भ करने से पहले अनेकों बड़ी-बड़ी परिक्षाओं से गुजरना पड़ता था, जब वे उन परिक्षाओं में खरे उतरते थे तब ही उन्हें संगीत शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता था। इसके बाद पंडित विष्णुदिगम्बर पुलस्कर एवं विष्णुनारायण भातखण्डे जी के प्रयासों द्वारा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में एक विषय के रूप में मान्यता मिली एवं आधुनिक समय में संगीत शिक्षण इतना आसान व सुविधाजनक हो गया है कि एक आम विद्यार्थी के लिए भी संगीत शिक्षा ग्रहण करना काफी आसान हो गया है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत शिक्षण के लिए आधुनिक समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अनेकों संगीत शिक्षण संस्थाओं का जाल पूरे भारत में बिछाया जा चुका है। इसके अलावा रेडियो, टेलिविजन, ऑडियो, वीडियो सी. डी., टेपरिकार्डर आदि अनेकों वैज्ञानिक संसाधनों द्वारा संगीत शिक्षण बहुत ही सरल एवं सहज हो गया है। इसके अलावा विद्यार्थी वैज्ञानिक विधुत वाद्यों जैसे:-इलक्ट्रोनिक तबला तथा इलक्ट्रोनिक तानपूरा आदि की सहायता से घर पर अकेले ही अपना अभ्यास कर सकता है। कम्प्यूटर के आने से तो संगीत ही क्या बल्कि हर क्षेत्र में क्रांति सी आ गई। कम्प्यूटर से हर काम इतना आसानी से व बहुत जल्दी से हो जाता है। संगीत शिक्षण के क्षेत्र में कम्प्यूटर से घर बैठे ही अनेकों पुराने कलाकारों के रागों के रिकार्ड व पाठय् सामग्री घर बैठे ही आसानी से उपलब्ध हो जाती है। अत: वैज्ञानिक उपकरणों का संगीत में महत्वपर्ण भूमिका है।

आधुनिक समय में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत शिक्षण पद्धति में विचारणीय विषय:

प्राचीन एवं आधुनिक आधुनिक संगीत शिक्षण दोनों पद्धतियों की अपनी-अपनी विशेषताएं, गुण एवं दोष हैं। आधुनिक समय में संगीत शिक्षण काफी आसान एवं सुलभ हो गया है फिर भी इसमें सुधार की गुंजाईश एवं विचार करने योग्य अनेक विषय है। जिनका विवरण निम्नलिखित है:-

1. अधिक प्रतियोगिता के कारण बड़ी कक्षाओं में प्रवेश सम्बन्धी नियम व उत्पन्न समस्याएं।
2. कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या का नियमन।
3. संगीत शिक्षण पद्धति का वैज्ञानिक आधार।
4. पाठ्यक्रम का औचित्य।
5. महाविद्यालयों से स्नातकोत्तर स्तर तक पाठ्यक्रम की एकरूपता।
6. अनेकानेक विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम की एकरूपता।
7. शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ नियमित पाठ्यक्रम में लोक संगीत, सरल संगीत तथा समूह संगीत के तत्वों का समिश्रण।
8. पाठ्यक्रम में ऐतिहासिक तथ्यों का क्रमिक समावेश।
9. संगीत शिक्षा में भावात्मकता, संगीत की आन्तरिक दिव्यात्मकता, सौन्दर्यत्मकता तथा मनोवैज्ञानिक सार्थकता का समावेश।
10. संगीत शास्त्र पक्ष व क्रियात्कम पक्ष की सामजस्यता तथा प्रयोग प्रणाली मे उनके स्पष्ट सम्बन्ध की व्याख्या का समावेश।
11. ख्याल के साथ-साथ ध्रुवपद, धमार, ठुमरी, दादरा, सादरा आदि गेय विद्याओं का भी विशिष्ट आयु व क्षमता के अनुसार प्रशिक्षण।
12. स्वर, ताल तथा साधना पक्ष को प्रबल बनाने के लिए अतिरिक्त समय का प्रावधान।
13. विभिन्न कक्षाओं के लिए रागों का निर्धारण करते समय सरल से कठिन की ओर शुद्ध से मिश्रित की ओर या प्रचलित से अप्रचलित की ओर ध्यान देते हूए रागों का नियमन।
14. परम्परागत बंदिशों व गतों के साथ-साथ नवीन उत्कृष्ट रचनाओं का भी प्रयोग करते हुए सामाजिक परिवेश की अनुकूलता के साथ-साथ अच्छे रचनाकारों एवं अच्छे तथा धार्मिक काव्य को भी प्रोत्साहन देना।
15. शोध-प्रबन्धालयों का पाठ्यक्रम के अनुसार प्रयाप्त शोध-प्रबन्धों से युक्त होना तथा शोध-प्रबन्धों का स्तर ऊंचा होना जो शोध-प्रबन्ध शोधात्मक दृष्टि से लिखी गई हों, जिनमें मौलिक विचारों का समनव्य हो, जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित किया गया हो या अप्राप्य तथ्यों को संकलित किया गया हो, जो पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग से सम्बन्धित हो तथा जिनकी भाषा सरल व सहज हो आदि।
16. वैज्ञानिक संयन्त्रों की उपलब्धि तथा उनका शैक्षणिक प्रयोग।
17. गायन या वादन में विशेष कौशल सम्पन्न शिक्षकों की नियुक्ति तथा परास्नातक स्तर पर विशिष्ट गेय विद्याओं अथवा शास्त्र पक्ष के किसी विशेष पक्ष में विशेष योग्यता रखने वाले शिक्षकों की विशिष्ट शिक्षण की दृष्टि से नियुक्ति।
18. तबला वादकों की पर्याप्त मात्रा में नियुक्ति।
19. शिक्षकों के विचार का उचित निर्धारण।
20. शिक्षण प्रक्रिया में मौखिक शिक्षा के साथ-साथ श्यामपट्ट, चार्ट, मंच प्रदर्शन वैयक्तिक या सामूहिक अभ्यास पद्धति आदि का प्रयोग।
21. परम्परागत शिक्षण स्वरूप को अपनाते हुए आधुनिक परिवेश में शिक्षा का नवीनीकरण।
22. कंठ साधना के लिए उचित शिक्षण प्रक्रिया का समावेश।
23. संगीत शिक्षक के लिए मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र, वाद्य विज्ञान, कंठध्वनि के विज्ञान, दर्शन तथा अध्यात्म विषयों के प्राथमिक ज्ञान में परिचित होना।

24. ललित कलाओं के रचनात्मक व सौन्दर्यात्मक केन्द्रों की सामंजस्यता से शिक्षकों का परिचित होना।
25. शिक्षकों के अतिरिक्त स्नातक व स्नातकोत्तर पर धरानेदार उस्तादों विशेष कौशल युक्त शिक्षकों की विशेष नियुक्ति।
26. शिक्षक का शैक्षणिक गुणों से सम्पन्न होना।
27. संगीत शिक्षा के सांस्कृतिक महत्व पर बल देना।
28. अन्य विषयों के समान ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के विषयगत स्तर का निर्माण, स्थायित्व तथा प्राथमिक कक्षा से अनिवार्य विषय के रूप में मान्यता होना।
29. संगीत शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण के अन्तर्गत संगीत के प्रचार तथा प्रसार के साथ-साथ योग्य शिक्षक, कलाकार, श्रोता, आलोचक, शोधक, शास्त्रकार आदि उत्पन्न करना व समाज को नैतिक उत्कर्ष की ओर ले जाना आदि तत्वों का समावेश।

इसके अलावा ऐसे कलाकार जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के बावजूद नि:स्वार्थ भाव से केवल हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत परम्परा को जीवित रखने एवं आगे बढ़ाने के लिए गाते एवं बजाते हैं, उनके बारे में हमारी सरकार को सोचना चाहिए।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर सूचनाक्रांति का प्रभाव:

परिवर्तन में क्रमिक विकास एवं क्रांति दोनों निहित हैं। एक ही दिशा में उपलब्धि को विकास कहा जाता है, जबकि दिशा परिवर्तन से क्रांति होती है। इस क्रांति का क्या प्रभाव पड़ा, इसका विवेचन शोध कार्य के अन्त एवं उचित प्रसंगों पर यथा स्थान किया जाएगा। यहां केवल वैज्ञानिक आविष्कारों का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

वैज्ञानिक आविष्कार एवं हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत:

वर्तमान युग में वैज्ञानिक आविष्कारों ने विश्व की सभ्यता एवं संस्कृति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। 1877 ई0 में एडिसन ने ग्रामोफोन का आविष्कार करके विज्ञान जगत के सम्मुख एक नवीन उदाहरण प्रस्तुत किया था। दस वर्ष पश्चात् यूरोप ने डिस्क रिकार्ड, जिसे भारत में ग्रामोफोन का तवा भी कहते थे, बनने लगे। इसके द्वारा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत जगत में एक क्रांति-सी आ गई।

रिकॉर्डिंग की कला दिन प्रतिदिन उन्नति करती गई और धीरे-धीरे ग्रामोफोन का प्रचार हिन्दुस्तान में भी हुआ। उस समय अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों के रिकार्ड तैयार कर लिए गए, जिसमें उस्ताद स्व. इमदाद खां, इनायत खां, गौहर जान, अब्दुल करीम खां आदि। संगीतज्ञों के रिकार्ड प्रसिद्ध हैं। रिकार्डिंग की कला उस समय अधिक विकसित नहीं थी। अत: इस काल के संगीतज्ञों के रिकार्ड केवल उदाहरण स्वरूप ही है।

जैसा भी हो, इतनी दूर तक की कड़ी तो सुरक्षित है पर इसके पूर्व अर्थात् आज से 80 या 90 वर्ष पूर्व के कलाकार की कला केवल किवंदन्ती ही बनकर रह गई। इन विचारों को प्रमाणित करते हुए उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब ने एक कथा सुनाई थी। किशोरावस्था में उन्होंने एक बार कमरे में बैठकर पूरिया राग सुना था। उस कार्यक्रम के तीन-चार दिन बाद तक जब भी वे उस कमरे में जाते थे उन्हें ऐसा लगता था कि कमरे की दीवारे राग पूरिया गा रही हैं। उस्ताद उलाउद्दीन खां साहब ने वयोवृद्ध कलाकारों की साधना के प्रसंग में यह कथा सुनाई थी।

1901 ई0 में मरकॉनी ने रेडियो का आविष्कार किया जिसके फलस्वरूप रेडियो प्रसारण प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक बहुत से कलाकारों की रिकार्डिंग को समय-समय पर प्रसारित किया एवं कलाकारों के रिकार्ड को सुरक्षित रखा।

1929 ई0 से माइक्रोफोन यन्त्र का प्रयोग होने लगा। 1930 ई0 के पश्चात् यूरोप और अमेरिका में टेलीविजन का प्रचार होने लगा, पिछले कतिपय वर्षों से भारत में भी टेलीविजन का प्रयोग बढ़ रहा है। आजकल संगीत रंगीन दूरदर्शन का प्रचार बढ़ रहा है। 1982 के एशियार्ड के लिए 'इनसेट' द्वारा भारत के अनेक महानगरों में दूरदर्शन का केन्द्र स्थापित किया गया।

1950 ई0 से अमेरिका में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत लांगप्लेईंग रिकार्ड का प्रचार बढ़ा। वहां भारतीय कलाकारों के रिकार्ड बनाये गये और उन्हें भारत भेजा गया। टेप-रिकार्ड से लम्बे-लम्बे कार्यक्रमों का रिकार्ड बना लेना और एक साथ कई लांगप्लेईंग रिकार्डों को लगाकर घण्टों तक संगीत के आनन्द लेने की कल्पना आज से लगभग पचास वर्ष पर्व के कलाकारों और श्रोताओं को न थी। आकाशवाणी ने इनके संग्रहण की व्यवस्था कर रखी है, जिसमें अनेक दिग्गज संगीतज्ञों के कार्यक्रमों की रिकार्डिंग सुरक्षित है।

''ध्वनिविस्तारक उपकरणों के आने से आज कलाकार हजारों श्रोताओं के बीच अपना प्रदर्शन कर पाने में सक्षम हैं। माइक्रोफोन के जरिये कलाकार के प्रदर्शन में सुधार हुआ है और वह अपनी कला के प्रति सचेत हुआ है।''[4]

उपरोक्त वैज्ञानिक आदानों द्वारा हन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसे क्रांति की संज्ञा दी जा सकती है। संगीत के क्षेत्र में इनके द्वारा किए गए परिवर्तनों का अनुमान लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दुस्तानी संगीत: परिवर्तनशीलता- असित कुमार बनर्जी, शारदा पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ. सं. 100
2. नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक, वर्ष-1, अंक-1, नवम्बर 2014, पृ. सं. 31
3. साक्षात्कार उस्ताद इकबाल अहमद खां एवं तनवीर अहमद खां, शास्त्रीय गायक, दिल्ली घराना, साक्षात्कार दिनांक : 06.07.2016
4. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग - अनीता गौतम, पृ. सं. 179